

नामवर की आलोचना में परंपरा का निर्वाह

विकाश पाठक, सहायक प्राध्यापक, हिंदी, शासकीय महाविद्यालय, देवतालाब, जिला— मऊगंज.

Manuscript Received: Aug 25, 2026; Revised: Aug 30, 2026; Published: Sep 23, 2026

शोध—सारांश: नामवर जी परंपरा को महत्वपूर्ण स्थान देने वाले आलोचक हैं। उनका मानना है कि परंपरा को बिना जाने एक अच्छा कवि या आलोचक नहीं बना जा सकता। नामवर जी ने अपनी आलोचना में परंपरा का निर्वाह किया है मगर वे परंपरा के भार से दबे नहीं हैं; बल्कि उन्होंने परंपरा का पुनर्मूल्यांकन किया है और इसे पहले से बेहतर रूप में प्रस्तुत किया है। जैसा कि नामवर जी ने कहा है— “शास्त्र को अपने ऊपर सवारी मत करने दो, शास्त्र पर सवारी करो फिर चाहे वह भारतीय काव्यशास्त्र हो या पश्चिमी काव्यशास्त्र।” नामवर जी ने परंपरा का अंधानुकरण कहीं नहीं किया है। यही कारण है कि नामवर जी ने छायावादी कविताओं को पढ़ने का एक नया दृष्टिकोण दिया। छायावाद के अन्य नामों (रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद) के विवाद में न पड़कर उन्होंने मात्र एक नाम देना चाहा ‘छायावाद’। जिसमें सभी तरह की कविताएँ आ जाती हैं। छायावाद को मात्र आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ना देखकर सामाजिक दृष्टिकोण से देखते हुए परिभाषित किया। उन्होंने छायावाद को न तो नगेंद्र की तरह ‘स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह’ कहा और न आचार्य शुक्ल की तरह इन कविताओं को ‘शैली मात्र’ कहा। बल्कि नामवर जी ने छायावादी कविताओं को राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति माना। नामवर जी के शब्दों में— “छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।” नामवर जी ने छायावादी कविताओं को गतिशील कविता माना जो समय सापेक्ष रहती। जैसे-जैसे राष्ट्रीय जागरण का विकास हुआ इन कविताओं ने भी अपनी विषय-शैली-रूप को बदला। यही कारण है कि छायावादी कविताएँ मात्र एक शैली में लिखी गई कविताएँ नहीं हैं। यहाँ पर शैली की विविधता है, यहाँ पर रूप की विविधता है और यहाँ पर विषय की विविधता है। नामवर जी ने छायावादी कविताओं को परंपरा से प्राप्त काव्यशास्त्र के आधार पर व्याख्यायित ना करके उन्हीं कविताओं के आधार पर व्याख्या की; और अपनी पुस्तक छायावाद के अध्यायों का नामकरण भी छायावादी कविताओं की पंक्तियों के नाम पर किया। नामवर जी ने छायावादी वैयक्तिकता को मध्य वर्ग की पहली सामाजिक स्वाधीनता की संज्ञा दी है। नामवर जी के अनुसार छायावादी कवियों ने परंपरा से विद्रोह किया और पहली बार अपने प्रेम की उद्घोषणा अपनी कविताओं के माध्यम से किया। इसी प्रकार नामवर जी ने छायावादी कवियों की आत्माभिव्यक्ति को ‘आत्मप्रसार की आकांक्षा’ कहा है; और यही आत्मप्रसार व्यक्ति को उसके विराटता का अनुभव कराता है। कहना ना होगा कि नामवर जी ने छायावादी कविताओं का अध्ययन पूरी विराटता के साथ किया। शुक्ल परंपरा और अन्य इतिहासकारों की सीमा की त्रुटियों पर विचार करते हुए नामवर जी ने छायावादी कविताओं को पढ़ने के लिए नहीं दृष्टि और बुद्धि प्रदान की। नामवर जी इस वैयक्तिक स्वतंत्रता का अहम योगदान राजनीतिक स्वतंत्रता में देखते हैं। नामवर जी का मानना है कि— “वैयक्तिक स्वाधीनता से ही स्वस्थ सामाजिकता का विकास संभव है।” यहाँ नामवर परंपरा से टकराते हुए नजर आते हैं। जहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रता की जगह सामाजिक बंधन महत्वपूर्ण था। नामवर विशाल सम्मिलित परिवार की जगह छोटे-छोटे परिवारों की इकाइयों को ज्यादा महत्व देते हैं; क्योंकि उनका मानना है कि “व्यक्तिगत स्वाधीनता का अनुभव किये बिना राष्ट्रीय स्वाधीनता की ओर कदम नहीं उठाया जा सकता है।” नामवर जी इसी ‘व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आकांक्षा’ को ही छायावादी कवियों का प्रकृति की ओर आकर्षित होने का प्रमुख कारण मानते हैं। नामवर जी धर्म की संकीर्णता को मानव विकास की रुकावट का एक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं। धर्म की संकीर्णता ने मनुष्य को एक सीमा में बांध के रखा और इस सीमा को तोड़ा छायावादी कवियों ने; इसीलिए नामवर भक्ति आंदोलन के बाद सबसे महत्वपूर्ण छायावादी कविताओं को मानते हैं। छायावादी कविताओं ने मनुष्य की तमाम तरह की संकीर्णताओं को बुद्धि और विवेक के द्वारा तोड़ा। परंपरा को ग्राह्य और वांछनीय मानने वाले नामवर जी ने अपनी परंपरा का निर्वाह आलोचना में किया है। नामवर जी मानते हैं कि परंपरा स्वयं प्राप्त नहीं होती बल्कि इसे अर्जित करना पड़ता है; और जो जितना अधिक अपने अतीत को जानेगा, अपनी परंपरा को समझेगा, उतना ही अपने भविष्य और वर्तमान को सुरक्षित रख पाएगा। परंपरा पर बात करते हुए नामवर जी कहते हैं कि— “एक बात तो यह हुई कि परम्परा सहज रूप में अपने आप प्राप्त नहीं होती; बल्कि इसे अर्जित करना पड़ता है, प्रयत्न करना पड़ता है। प्रयत्न करने का अर्थ है कि इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है और इस संघर्ष के पीछे एक बहुत बड़ी चिंता होती है कि उसमें से जो भी मूल्यवान है, यदि नहीं पा लेंगे तो ऐसी शक्तियाँ मौजूद हैं, हमारे यहाँ से बाहर भी, जो उसे हमसे छीन लेंगी और इस कदर छीन लेंगी कि हम फिर उसे प्राप्त नहीं कर सकेंगे।”

बीज शब्द: साहित्य, इतिहास, आलोचना, परम्परा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नामवर सिंह, भक्ति काव्य, अतीत, छायावाद।

शोध—लेख: नामवर जी का लेखन प्रारंभिक दौर में आधुनिक कविताओं, कहानियों तक ही रहा; लेकिन जब उन्होंने देखा कि हमारे अतीत की व्याख्या गलत ढंग से हो रही है, जो प्रतिमा शुक्ल जी ने गढ़ दी थी उसी राह पर सारे आलोचक चलते नजर आ रहे हैं, तब नामवर जी ने अपनी लेखनी से परंपरा का मूल्यांकन नए दृष्टिकोण के साथ किया। जिसपर मार्क्सवादी आलोचना की छाप नजर आती है। नामवर जी ने पूरे भक्ति साहित्य की व्याख्या एक नए सिरे से की। नामवर जी भक्ति को दक्षिण भारत की देन मानते हैं। नामवर जी लिखते हैं— “मेरी समझ में भक्ति समूची भारतीय संस्कृति को दक्षिण की देन नहीं बल्कि सबसे महत्वपूर्ण देन है।” नामवर जी ने भक्ति काव्य रूपी सागर में डुबकी लगाई है न कि उसे हनुमंत समान केवल छलांग लगाकर पार किया है। यही कारण है कि केवल बाहरी बातों के आधार पर भक्ति को परिभाषित न करके उन्होंने भक्ति के मर्म को जाना है; और उस भक्ति तत्व और भक्तिभाव, उसमें निहित सामाजिकता तथा सांस्कृतिक आयाम को तलाशने की कोशिश की है। नामवर जी भक्ति काव्य को हिंदी साहित्य के इतिहास का केवल क्रमिक विकास मानने के पक्षधर नहीं हैं जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल मानते हैं कि— “देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश ना रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था; और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे।..... अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?” बल्कि नामवर जी संपूर्ण भक्तिकाव्य को एक क्रांतिकारी घटना के रूप में देखते हैं। नामवर जी लिखते हैं— “छठी शताब्दी के आसपास एक सांस्कृतिक शिफ्ट था, एक परिवर्तन था, एक क्रांति हुई थी और इस क्रांति का एक प्रचलित नाम भक्ति है। इसलिए भक्ति को केवल क्रमिक विकास के रूप में देखना ऐतिहासिक भ्रम है, दोष है, बल्कि यह एक नए परिवर्तन का सूचक है। इस रूप में भक्ति को देखा जाना चाहिए।” और इस सांस्कृतिक शिफ्ट का परिणाम नामवर ‘प्रेम’ रूपी पुरुषार्थ में देखते हैं। यहाँ नामवर जी ने पुरुषार्थ चतुष्टाय की जगह पाँचवाँ और सबसे ऊँचा पुरुषार्थ ‘प्रेम’ को स्थापित किया। नामवर जी भक्ति आंदोलन को आधुनिक भाषाओं की जीवनदात्री मानते हैं क्योंकि भक्ति के माध्यम से ही कई लोक भाषाएँ काव्य की भाषा बनीं। नामवर लिखते हैं— “पहली बार इस भक्ति साहित्य ने दलितों व पिछड़े हुए लोगों को, जो अपनी भाषा तो बोलते थे लेकिन वह भाषा कविता का गौरव नहीं प्राप्त कर सकी, काव्य की प्राण शक्ति नहीं बन सकी थी, भक्ति आंदोलन के बाद संस्कृत के समानांतर भारत की सभी भाषाएँ एक— एक करके,

जहाँ—जहाँ भक्ति पहुँची वहाँ—वहाँ वे जी उठीं और काव्य की भाषा बनो।¹⁰⁸ नामवर जी भक्ति को केवल काव्य तक सीमित रखने के पक्षधर नहीं रहे हैं बल्कि वे भक्ति को अन्य कई कलाओं का उद्भावक मानते हैं। नामवर जी ने भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा है— “भक्ति एक तरह से कविताओं में भाषा का नृत्य है।” नामवर जी ने भक्ति को सर्जनात्मक विस्फोट माना। जिसके कारण कई तरह की कलाओं को अभिव्यक्ति मिली। इस तरह से भक्ति केवल कविता ना होकर अपने आप में ‘टोटल कल्चर’ है। यहीं पर नामवर जी ने नए सिरे से सांस्कृतिक इतिहास लिखे जाने की बात कही है क्योंकि नामवर जी का मानना है कि जिस आधुनिकता की शुरुआत हम उन्नीसवीं शताब्दी से मानते हैं उसकी नींव भक्ति आंदोलन में है। इस पर नामवर जी लिखते हैं— “मेरा ऐसा मानना है की भक्ति के साथ भारत ने, उस सामंती समाज व्यवस्था ने, अर्थतंत्र में भले ही बड़ा फेरबदल न किया हो लेकिन सांस्कृतिक और मानसिकता के स्तर पर उसमें आधुनिकता का उदय हो गया था और उस आधुनिकता की मैं एक पहचान मानता हूँ, वह पहचान है, मानव की गरिमा को महत्व। वह व्यवस्था अनाधुनिक है जिसमें किसी का महत्त्व उसके कुल के कारण होता है, किसी का महत्त्व उसके पद के कारण होता है, किसी का महत्त्व उसकी जात के कारण होता है, किसी का महत्त्व उसके धर्म के कारण होता है। भक्तों ने पहली बार यह स्थापित किया कि भक्त का महत्त्व जात के कारण नहीं, कुल के कारण नहीं, पद के कारण नहीं, संपत्ति के कारण नहीं, धर्म के कारण नहीं होता बल्कि उसका महत्त्व होता है उसके भक्ति भाव के कारण। इसलिए वह व्यक्ति रूप में महत्वपूर्ण है।”¹⁰⁹ इस प्रकार नामवर जी व्यक्ति मानव की गरिमा की स्थापना को आधुनिकता का प्रमाण मानते हुए आधुनिकता की जड़ भक्ति से जोड़ते नजर आते हैं। नामवर जी आधुनिक होकर भी परंपरा को महत्त्व देने वाले आलोचक रहे हैं। इसी कारण वे परंपरा को महत्वपूर्ण मानने वाले पाश्चात्य आलोचक इलियट से भी प्रभावित हैं। जिस तरह इलियट ने उन कवियों को सामने लाया जिन पर अंग्रेजी के कवियों की नजर कम पड़ी थी ठीक यही काम नामवर जी ने हिंदी साहित्य में किया। भक्ति साहित्य में संत तुकाराम, मीरा, तुलसी और कबीर के संदर्भ में नई व्याख्याएं दीं तो वहीं आधुनिक साहित्य में मुक्तिबोध पर लेखनी चलाई, जिनकी चर्चा हिंदी जगत में बहुत कम हुई थी। नामवर जी ने संत तुकाराम को समाज के सबसे निचले तबके की आवाज बताया है, जिनके पदों में अस्मिता की आवाज साफ तौर पर सुनाई देती है। इसका संदर्भ नामवर जी तुकाराम के इस अंश से लेते हैं जिसमें तुका का कहते हैं— “बरा कुणबी केलों। नाहीं तरि दम्भचि असतों मेलो। भलें केलें देवराया। नाचे तुका लागे पायां।। (अर्थात् हे देवराज! तूने अच्छा किया, मुझे कुणब बनाया। ब्राह्मण बनाया होता तो उसी दंभ तले घुट घुटकर मरता रहता। अब तुका तेरा नाम लेता है, तेरी भक्ति की मस्ती में नाचता है और तेरे चरणों का आश्रय पा सका है।)”¹¹⁰

इस प्रकार नामवर बताते हैं की भक्ति असल में निचले तबके की आवाज है, जिनका समाज के उच्चवर्ग ने आयातीकरण (एप्रोप्रिएशन) कर लिया है। इसे नामवर ने संस्कृतीकरण कहा है। जिसमें उच्च वर्ग ने बड़ी चतुराई से लोकभाषा की कथाओं को अपने उच्चवर्ग की संस्कृति भाषा में परिवर्तित कर दिया और इसे संस्कृत की कथा बताया। नामवर ने तुकाराम को वाक संयमी कहा है; अर्थात् तुका शब्दों के मामले में मितव्ययी हैं। बोलेंगे थोड़ा ही पर नपे—तुले शब्दों में धीर—गंभीर बात। जो कोरा भावोच्छवास नहीं है अपितु सुविचारित है। जैसे तुका कहते हैं— ‘मेरे तई तो मर गया है प्रभु। जिनका होगा, होगा उन्हें।’ इन शब्दों से तुका की पीड़ा का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसी को नामवर जी ने तुका कि आपबीती में जगबीती कहा है। तुका जिंदगी से चाहे जीतने ऊबे रहे हों, यहाँ तक कि भगवान का भी भरोसा नहीं रहा; पर तुका ने जब भी गाया डूबकर गया है। नामवर जी ने इनकी रचनाओं को कालजयी कृति कहा है। नामवर लिखते हैं — “चार सौ वर्षों के बाद भी तुकाराम आज के कवि मालूम होते हैं। ताजमहल को देखकर जैसे लगता है, वह मानो अभी कल ही बना है, उसी तरह प्रत्येक कालजयी कविता भी प्रत्येक युग में ताजा मालूम होती है।”¹¹¹ नामवर जी भक्ति काल को मध्यकाल कहने पर आपत्ति जताते हुए इसे ‘लोक-जागरण’ का काल कहते हैं। जिसमें शूद्रों और स्त्री कवियों की निर्णायक भूमिका रही है; और तुकाराम इसी लोक-जागरण के अंतिम चरण के कवि हैं। नामवर लिखते हैं— “मध्यकाल स्पष्टतः यूरोपीय इतिहास का तथाकथित Medieval और Middle Age है जिसे वहाँ ‘अंधकार युग’ के रूप में याद किया जाता है, जबकि आधुनिक भारतीय भाषाओं का भक्तियुग जगमगाता हुआ प्रकाश-पुंज है। यदि हम पश्चिम विद्वानों की प्राच्यवादी इतिहास दृष्टि के आतंक से मुक्त होकर अपने पूर्ववर्ती इतिहास पर दृष्टिपात करें तो लगभग एक सहस्राब्दी के बीच फैला हुआ विशाल भारतीय भक्ति आंदोलन सच्चे अर्थों में ‘लोकजागरण’ है, जिसमें निर्णायक भूमिका तथाकथित शूद्रों और स्त्री कवियों ने अदा की थी।”¹¹² मीरा को नामवर जी विद्रोह का प्रतीक बताते हुए लिखते हैं कि “आज के समय में अगर मेरा को समझना है, तो सर्वप्रथम हर पुरुष अपने मन की गहराइयों से खुद को स्त्री समझें।” और यह सही भी है क्योंकि मीरा की निगाह में तो केवल एक ही परम पुरुष हैं उनके आराध्यदेव गिरिधर गोपाल। नामवर जी मीरा की चर्चा करते हुए एक महत्वपूर्ण घटना की और ध्यान आकर्षित करते हैं जिधर अन्य आलोचकों का ध्यान नहीं गया। तत्कालीन समय में विधवा नारी को सती होना पड़ता था, फिर मीरा तो राजकुल घराने की थीं, ऐसे में विधवा होने पर सती न होना राजपूत परंपरा से सीधे बगावत थी। यही पर नामवर जी मीरा के विद्रोह और आज के तथाकथित नारी विद्रोह में अंतर बताते हुए लिखते हैं— “मैं मीरा के विद्रोह की प्रकृति को रेखांकित करना चाहता हूँ क्योंकि पश्चिम के नारीवादी विद्वानों ने मीरा का उपयोग पुरुषों के खिलाफ एक धारदार हथियार के रूप में किया है, जबकि तथ्य यह है कि मीरा का हथियार प्रेम है जो उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए हथियारों का बेहतर विकल्प है। वे अपनी ताकत का इस्तेमाल उस तरीके से नहीं करतीं जिस तरह आज की महिलाएं पुरुषों की मुखालफत के लिए करती हैं।”¹¹³ मीरा के अधिकांश पद निचली जातियों में आज भी गाए जाते हैं। मीरा को लेकर कई तरह की दंत कथाएं प्रचलित हैं; और इन्हीं दंतकथाओं को आधार मानकर मीरा पर कई नवीन शोध किए जा सकते हैं। जिसकी तरफ इशारा नामवर जी ने किया है। नामवर जी लिखते हैं— “यह जरूरी नहीं कि हम सत्य को प्रमाणित करने के लिए इतिहास का संधान करें क्योंकि मौखिक इतिहास-वृत्तों एवं दंतकथाओं में भी अर्थ की अनंत संभावनाएं निहित हैं।”¹¹⁴ यह सही भी है क्योंकि कई दफा हमें इतिहास से वह जानकारी नहीं मिल पाती जो लोक में प्रचलित है, क्योंकि लोककथाएं लोकगीत की परंपरा हमारे देश में बहुत समृद्ध रही है; अगर इन्हीं दंतकथाओं को आधार मानकर मीरा पर नवीन शोध किए जाएं तो निश्चित ही इसके परिणाम लाभदाई होंगे। यहाँ पर नामवर जी ने एक बहुत बड़ी विडंबना की ओर भी इशारा किया है नामवर लिखते हैं कि “जाति व्यवस्था पर आधारित रूढ़िबद्ध समाज में—‘स्त्री’, फिर चाहे वह किसी भी जाति की क्यों न हो, पांचवीं जाति में शुमार होती है। शायद इसी वजह से शोधकर्ताओं के अनुसंधान में यह साफ परिलक्षित होता है कि मीरा के गीत उन्हीं लोगों एवं जनजातियों में ज्यादा गए जाते हैं, जो कबीर के पद गाते हैं।”¹¹⁵ अर्थात् इस पुरुष प्रधान समाज में जिस तरह नारी को त्याज्य समझा जाता है, उसी प्रकार मीरा के गीतों को भी उच्च वर्गों ने जगह नहीं दी; बल्कि उनकी इस प्रेम-भक्ति को राजघराने का अपमान ही समझा गया। भक्ति आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण मूल्य प्रेम को बताते हुए नामवर लिखते हैं कि “भक्ति काव्य ही ऐसा काव्य है जिसमें पहली बार स्त्रियों को कुछ कहने की स्वतंत्रता दी गई। पहली बार स्त्रियां कवि रूप में सामने आईं। साथ ही सभी जाति के लोग— चाहे बुनकर हों, चमार हों, मोची हों, कारीगर हों सभी का उदय कवि के रूप में हुआ; और इसी कारण यह कविता निचले तबके की लोकवाणी में ही रही। अभिजात वर्ग से ये कविताएँ बर्दाश्त नहीं हुईं और न उन्होंने इसे बढ़ावा देना उचित समझा।”¹¹⁶ नामवर जी ने तुलसीदास को निरा ब्राह्मणवादी कहने वाले और उन पर वर्ण-व्यवस्था को प्रचारित करने का आरोप लगाने वाले को जमकर फटकार लगाई है। नामवर जी कहते हैं कि ‘ऐसा वही कह सकता है जिसने तुलसी को समग्रता में पढ़ा नहीं है।’ और यह भ्रांत धारणा लोगों में फैल गई है। जबकि साहित्य को एक निरंतरता में देखना चाहिए। नामवर जी कहते हैं कि आज का युग उपयोगितावाद का युग है। लोग अपनी सुविधानुसार तुलसी का उपयोग करते हैं। तुलसी के यहां वर्ण व्यवस्था कर्म आधारित है और यह उनका यूटोपिया है— एक आदर्श राज्य का यूटोपिया। जहाँ समाज को नियंत्रित करने के लिए सबके अपने कर्म निर्धारित हैं, सब अपना-अपना कार्य करते हैं; पर भक्ति के क्षेत्र में यह कर्म का बंधन भी खत्म हो जाता है। वहाँ केवल ‘भाव’ महत्वपूर्ण है। इसीलिए तुलसीदास की सबसे महान कृति रामचरित-मानस में भी ‘काकभुशुंडी’ (जो कि पक्षियों में दलित है) ‘गरुड़’ (जो पक्षियों में राजा है) को उपदेश दे रहा है। यहाँ भक्ति की भूमि में केवल एक ही आदर्श है— ‘भक्ति’। फिर चाहे स्त्री हो, केवट हो, सब एक समान हैं। यही कारण है कि पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कबीर के इतने बड़े प्रशंसक होने के बाद भी कहते हैं— “अगर कोई हिंदी भाषी

समाज का राष्ट्रकवि है तो तुलसीदास है, कबीर नहीं है। कबीर कवि के रूप में भी छोटे हैं, उनसे हर तरह से छोटे हैं। बड़े क्रांतिकारी थे, सब थे, लेकिन जहाँ तक कवि का सवाल है, तुलसीदास के सामने कबीर कहीं नहीं ठहरते हैं।¹⁷ और नामवर भी तुलसी को सबसे बड़ा कवि कहते हैं। इतना कहकर वे चुप नहीं रहते बल्कि तुलसी को अग्रचेता और अग्रदृष्टा बताते हुए कहते हैं — “ये अग्रचेता थे, भविष्यदृष्टा थे। ये ज्योतिषी थे, किंतु ग्रह-नक्षत्रों की चाल तथा समय के लघु विभागों की माप करने वाले नहीं, बल्कि समय की लघु से लघु लहरों में उठने-गिरने वाले समाज की रूपरेखा, बनने और बिगड़ने ज्ञान रखने वाले थे।”¹⁸

नामवर जी तुलसीदास को वर्तमान समाज के सबसे बड़े निर्माता के रूप में देखते हैं; क्योंकि जिस समय देश में मुसलमान शासन था सभी तरह के आदर्शों को क्षति पहुंचाई जा रही थी। वर्ण, धर्म, कुल, आश्रम सब पर संकट के बादल मंडरा रहे थे, तब तुलसीदास जी ने धर्म का सहारा लिया। यह तुलसी का लोकधर्म ईश्वर से उतना संबंधित नहीं था जितना जनता के व्यावहारिक जीवन से। नामवर लिखते हैं— “गोस्वामी जी जानते थे कि भारतीय समाज धर्म से इतना ओत-प्रोत है कि ‘एकै साथ सब सधे’ के अनुसार धर्म के समुचित मानदंड से ही भारतीय समाज का सुधार संभव है। इसीलिए मुस्लिम संस्कृत के प्रभाव से, आक्रांत हिंदू जाति की रक्षा के लिए ‘श्रुति-सम्मत’ एवं ‘लोक-विहित’ आदर्शों की फिर से प्रतिष्ठा की, साथ ही वर्ण, धर्म, आश्रम धर्म, कुलाचार आदि की पुनर्स्थापना की।”¹⁹ नामवर परंपरा के निर्वाह में अपनी लेखनी कबीर पर भी चलाते हैं, जिनके कारण नामवर जी को एक दूसरी परंपरा का आभास हुआ। जो महान लोगों की परंपरा न होकर निम्न वर्ग की परंपरा थी। नामवर जी कबीर को कई वर्ष पीछे ले जाते हुए वाल्मीकि की परंपरा का बताते हैं; क्योंकि जिस तरह वाल्मीकि की कविता क्रोंच युगल के दुख से द्रवित होकर निकली, उसी तरह ‘कबीर की कविता भी वेदना की कविता है।’ समाज को दुख में देखकर कबीर भी द्रवित होते थे, इसीलिए कबीर संत थे। वैसे तो हिंदी साहित्य के काल-विभाजन में भक्ति काल के ज्ञान मार्गी कवियों को संत कह दिया गया है और सगुण कवियों को भक्त कवि; लेकिन तुलसीदास जी ने जैसे संत को परिभाषित करते हुए कहा है— “पर दुख ताप द्रवहिं सो संता।” कबीर इसी अर्थ में संत थे। नामवर, शुक्ल जी की इस मान्यता का भी खंडन करते हैं कि कबीर एक ‘समाज-सुधारक’ थे, हालांकि इसका पहले की खंडन उनके गुरु पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी ‘कबीर’ पुस्तक में कर दिया था। नामवर जी कबीर को पहला ‘इंटलेक्चुअल’ मानते हैं। एक ऐसा भक्त जिसने ज्ञान का सहारा लिया और यह ज्ञान भी ‘कोरी कागद लेखी’ नहीं, अपितु ‘आखिन देखी’ ज्ञान है। अपने अनुभव से कमाया हुआ ज्ञान है। जिसे कबीर ‘अनभे-सांच’ भी कहते हैं। यह भक्ति काल में पुनर्जागरण की अलख थी जिसे कबीर ने जलाया था। 1398 ईस्वी अर्थात् चौदहवीं शताब्दी जबकि पूरे हिंदुस्तान में मुस्लिम शासकों का आधिपत्य था, उस पर भी मुस्लिमों के खुदा को बहरा कहना या मस्जिदों पर खरी-खोटी सुनाना कोई मामूली बात नहीं है; और इतना ही नहीं काशी जैसे स्थान में रहकर— जो पांडित्य का गढ़ समझा जाता है, वहां पांडे कहकर पंडितों को खरी-खोटी सुनाना, उनकी शुद्धता पर प्रश्नचिह्न उठाना, उनके वेद-पुराणों पर सवाल करना यह कबीर ही कर सकते थे। इसीलिए नामवर लिखते हैं— “लोक आधारित ज्ञान की आंधी ले आने वाला पहला व्यक्ति कबीर था। जिस आंधी से एक ओर आग भी बरसती है और साथ में प्रेम की वर्षा भी होती है। 1398 को मैं एक महत्वपूर्ण घटना मानता हूं।..... 1398 की सबसे बड़ी घटना तैमूर लंग का हमला नहीं है, गुलाम वंश का अंत नहीं है—ज्ञान की आंधी ले आने वाले पहले आदमी कबीर का आना था।”²⁰ कबीर निरपक्ष कवि हैं। वे किसी भी पक्ष के साथ गांठ-जोड़ नहीं करते हैं, भले ही वे जन्म से मुसलमान थे और हिंदू गुरु के शिष्य थे, पर कबीर ने जब तक समाज में विषमताओं को देखा तो उसे सिर से नकार दिया। एक झटके में उन्होंने सबको नकारा चाहे हिंदू ईश्वर हों या मुस्लिम खुदा, चाहे मंदिर हो या मस्जिद। इसी कारण नामवर जी लिखते हैं— “कबीर का संपूर्ण काव्य विराट नकार काव्य है।”²¹ नामवर जी ने कबीर को ‘अगिनपाखी’ कहा है। जो खुद की आग से जलता है और राख हो जाता है और उसी राख से वह फिर से नया जन्म पाता है। कबीर भी ज्ञान की आग में जलते हैं। उनका ‘सबद’ अगिनपाखी का गान ही है और इस ज्ञान की आग में कबीर ने अपना सबकुछ न्योछावर कर दिया है। इतना ही नहीं आगे वे उसका भी घर जलाने को कहते हैं जो उनके साथ चलने को तैयार होगा, अर्थात् ज्ञान की आग में जिसे जलना है वही कबीर के साथ चल सकता है।

“हम घर जारा आपनाँ, लिए मुराड़ा हाथि।

अब घर जारौं तास का, जो चलै हमारे साथि।।”

और अंत में कबीर की महत्ता को स्वीकार करते हुए नामवर लिखते हैं— “अनल पक्षी नापैद है तो कबीर भी। दूसरा कबीर नहीं हुआ। कबीर ही कबीर हैं।”²² इस प्रकार हम देखते हैं कि नामवर परंपरा के निर्वाह में परंपरा का मूल्यांकन नई दृष्टि से करते हैं जिसमें मूल मूल्य ‘प्रेम’ है। मनुष्य का मनुष्य से प्रेम। नामवर जी ने परंपरा का यह निर्वाह केवल भक्ति आंदोलन में ही नहीं किया है बल्कि आधुनिक युग में भी परंपरा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कई नई स्थापनाएं दी हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची —

1. त्रिपाठी, आशीष. बात-बात में बात, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 57।
2. सिंह, नामवर. छायावाद, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2023, पृष्ठ संख्या 17।
3. वही, पृष्ठ संख्या 36।
4. त्रिपाठी, आशीष. भक्ति काव्य परम्परा और कबीर, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 76।
5. वही, पृष्ठ संख्या 30।
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली: श्री प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 53।
7. त्रिपाठी, आशीष. भक्ति काव्य परम्परा और कबीर, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 33।
8. वही, पृष्ठ संख्या 35।
9. वही, पृष्ठ संख्या 41।
10. वही, पृष्ठ संख्या 159।
11. वही, पृष्ठ संख्या 163।

12. वही, पृष्ठ संख्या 163।
13. वही, पृष्ठ संख्या 168।
14. वही, पृष्ठ संख्या 168।
15. वही, पृष्ठ संख्या 169।
16. वही, पृष्ठ संख्या 174।
17. वही, पृष्ठ संख्या 182।
18. वही पृष्ठ संख्या 184।
19. वही, पृष्ठ संख्या 213।
20. वही, पृष्ठ संख्या 233।
21. वही, पृष्ठ संख्या 234।